मनु की देन

पं. भगवद्दत्त जी

राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति

[मनुस्मृति-विषयक विभिन्न बिन्दुओं की
विभिन्न विद्वानों द्वारा तर्क-प्रमाणयुक्त समीक्षा]

लेखक एवं संकलन-सम्पादक

डॉ० सुरेन्द्रकुमार

आचार्य, एम.ए. संस्कृत-हिन्दी

(मनुस्मृति भाष्यकार एवं समीक्षक)

प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा)

© **सर्वाधिकार सुरक्षित**

ISBN 978-81-7077-125-0

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली–110 006
दूरभाष : 23977216, 65360255
e-mail : ajayarya@vsnl.com
Website : www.vedicbooks.com

वैदिक–ज्ञान–प्रकाश का गरिमापूर्ण 84वाँ वर्ष (1925–2009)

संस्करण : 2009

मूल्य : 150.00 रुपये

मुद्रक : नवशक्ति प्रिंटर्स, दिल्ली–110 032

RAJRISHI MANU AUR UNKI MANUSMRITI *by* Dr. Surendra Kumar

सम्पादकीय

'राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति' शीर्षक यह मुक्ताहार पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे पर्याप्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके तीन कारण हैं—एक, इस विषय के विशेषज्ञ अनेक वैदिक विद्वानों के लेख इसमें ऐसे संकलित हैं जैसे किसी हार में मोतियाँ पिरोई होती हैं। उन विद्वानों के मनु और मनुस्मृति-सम्बन्धी चिन्तन से पाठक लाभान्वित हो सकेंगे। दूसरा, यह पुस्तक मनु और मनुस्मृति-विषयक भ्रान्तियों को दूर करने में सहायक सिद्ध होगी तथा उन भ्रान्तियों के विस्तार को रोकेगी। तीसरा, एक ही स्थान पर, एक विषय पर, अनेक विचारकों के विचार एकत्र मिलना कठिन होता है। सबको सब पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पातीं, अतः अध्ययन-मनन में पाठकों को सुविधा-लाभ होगा।

सन् 1996 (विक्रमी सम्वत् 2053) और उसके कुछ पूर्व वर्षों में कुछ राजनीतिक दलों ने मनु-मनुस्मृति को अपनी स्वार्थपूर्ति का मुद्दा बनाकर 'मनुवाद' के नाम पर खूब विषवमन किया और भारतीय समाज में विघटन के बीज बोने शुरू कर दिये। आर्यसमाज जैसा राष्ट्रभक्त संगठन इस राष्ट्रविरोधी गतिविधि से चिन्तित हो उठा। राष्ट्रहितैषी बुद्धिजीवियों के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएं झलकने लगीं। सब सोचते थे कि इसका निराकरण कैसे किया जाये। दुःख का विषय यह भी था कि यह सारा प्रोपगेंडा मिथ्या था और पाश्चात्य लेखकों द्वारा प्रयुक्त फूट-नीति पर टिका था। ऐसा लग रहा था—जैसे अंग्रेजों का स्वप्न स्वतन्त्र भारत में साकार होने लगा है।

किसी को भी आगे न आता देख इस समाज और राष्ट्रविरोधी निन्दनीय गतिविधि को रोकने के लिए आर्यसमाज उठ खड़ा हुआ। अपने तर्क रूपी तीर और प्रमाण रूपी तरकस लेकर, दृढ़संकल्प के कमरबन्द से

कमर कसकर, वैचारिक युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। वयोवृद्ध संन्यासी स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने सन् 1996 (विक्रमी संवत् 2053) को 'मनुवर्ष' घोषित कर दिया और मनुविरोधी वितण्डावाद को रोकने तथा मनु-सम्बन्धी सत्य मान्यताओं को प्रचारित-प्रसारित करने का कार्यक्रम बनाया। देश के कोने-कोने में आर्यसमाजों के माध्यम से मनु-विषयक उत्सवों के आयोजन हुए, अनेक स्थानों पर महासम्मेलन भी हुए, लेखों और ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। यह सब देखकर मनुविरोधी ठिठकने लगे। आर्यों के तर्कों और प्रमाणों के उत्तर न सूझने पर वे लोग बगलें झाँकते रह गये। मनुविरोधी अभियान में एक ठहराव-सा आ गया और भ्रान्तियों का प्रसार धीमा पड़ गया।

उसी वर्ष में स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने 'राजर्षि मनु' के नाम से आठ ट्रैक्ट प्रकाशित किये। एक ट्रैक्ट एक विद्वान के लेख पर आधारित था। लेखक सभी सुलझे हुए विद्वान् थे। विषय को प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत करने की योग्यता उनकी लेखनी में थी। जिस लेखक का जैसा अपना विचार था उसको बिना किसी टीका-टिप्पणी के उसी रूप में प्रकाशित कर दिया। लक्ष्य यही था कि लोगों तक मनु-सम्बन्धी अच्छे विचार एक बार पहुँचें।

उसी वर्ष आर्यसमाज भुवनेश्वर (उड़ीसा) के उत्सव पर उड़िया के आर्य लेखक श्री प्रियव्रत दास जी इन्जीनियर के निमन्त्रण पर स्वामी जी का और मेरा जाना हुआ। हम दोनों एक ही कक्ष में तीन दिन रुके। 'राजर्षि मनु' नामक पुस्तिकाओं के सैद्धान्तिक पक्ष पर पर्याप्त चर्चा हुई। स्वामीजी ने मुझे टिप्पणी-सहित एक पुस्तकाकार में इनका सम्पादन करने को कहा। फिर वह बात विस्मृति के अन्धकार में विलीन हो गयी। कुछ वर्षों के बाद स्वामी जी महाराज भी दिवंगत हो गये।

विचित्र संयोग देखिए। आर्य साहित्य के प्रकाशक, प्रचारक और वितरक 'गोविन्दराम हासानन्द, नयी सड़क, दिल्ली' के मन में वही योजना वर्षों बाद फिर से अंकुरित हुई और उसके सम्पादन का दायित्व फिर से मुझ पर आ गया। तब तो यह पूरा नहीं हो सका किन्तु अब इसको पूरा कर अपने पाँच लेखों के साथ इसे पाठकों के हाथों में सौंप रहा हूँ। पाठक

इसका अध्ययन कर अधिकाधिक लोगों को पढ़ने को प्रेरित करें जिससे भारत के ही नहीं, अपितु मानव जाति के गौरव रूप महापुरुष, आदिराजा, विश्व के आदि संविधान निर्माता, आदि धर्मशास्त्रकार और मानवों के आदि–प्रमुख–पुरुष महर्षि मनु के विषय में फैलाई जा रही भ्रान्तियों पर विराम लग सके और मनु की प्रतिष्ठा की रक्षा हो सके।

इस राष्ट्रहितकारी पुण्य कार्य का प्रकाशन–दायित्व अपने हाथों में लेने के लिए 'गोविन्दराम हासानन्द' प्रकाशन के स्वामी श्री अजयकुमार जी शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

गुड़गांव **—डॉ० सुरेन्द्रकुमार**

अनुक्रम

1. आदिराजा और आदि विधि-प्रदाता मनु स्वायम्भुव 11
(जीवनवृत्त, व्यक्तित्व और कृतित्व) *(डॉ. सुरेन्द्रकुमार)*
2. मनुस्मृति की मौलिक मान्यताएँ *(डॉ. सुरेन्द्रकुमार)* 35
3. मनुस्मृति में प्रक्षेप : प्रमाण और दुष्परिणाम *(डॉ. सुरेन्द्रकुमार)* 54
4. मनुस्मृति : एक अध्ययन *(स्व. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय)* 67
5. मनुस्मृति : रचनाकाल और प्रक्षेप *(स्व. आचार्य रामदेव)* 108
6. मनु की देन *(स्व. पं. भगवद्दत्त)* 138
7. राजर्षि मनु और मनुस्मृति *(स्व. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल)* 154
8. राजर्षि मनु और वेद *(डॉ. भवानीलाल भारतीय)* 169
9. मनु की वेदों के प्रति आस्था *(डॉ. कृष्णलाल)* 186
10. मनु की दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र *(डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल)* 210
11. चिन्तन की एक भिन्न दिशा : मनु की वर्ण-व्यवस्था में
शूद्र तथा अन्य वर्ण *(डॉ. उर्मिला रुस्तगी)* 238
12. वर्णव्यवस्था में आर्य-शूद्र वैमनस्य की अवधारणा
पाश्चात्य दुरभिसन्धि की देन *(डॉ. सुरेन्द्र कुमार)* 268
13. किस मनु का विरोध किया है डॉ० अम्बेडकर ने?
(डॉ. सुरेन्द्र कुमार) 276

6

मनु की देन

स्व. पं. भगवद्दत्त
(वैदिक इतिहासकार)

1. वेद का महत्व—अपने असाधारण और अति व्यापक ज्ञान के कारण, अपनी सूक्ष्मेक्षिका से, अपनी सात्विक और निर्मला प्रज्ञा से, अपने उस असीम योगबल से, जिसके आधार पर वह भूत, भव्य और भविष्य को जान गया, मनु ने वेद के अलौकिक ज्ञान-विज्ञान का गीत गाया। मनु का उपदेश है—

(क) वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। *(2/6)*

अर्थात्—वेद सम्पूर्ण धर्म (कानून Law) का मूल है। धर्म, राज्य का एक प्रधान अंग है। धर्म से ही दण्ड चलता है।[1]

धर्म से आचार-मर्यादा स्थिर होती है। धर्म से स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य, सेनापति-सेना, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, व्यापारी-व्यापार बँधे हुए हैं। धर्म-विहीन राजा-प्रजा गहरे गर्त में गिर जाते हैं।

इस सम्पूर्ण धर्म का मूल वेद है। परन्तु गत 1500 वर्ष में भारतीय लोग इस सत्य को भूल गये। इस काल में एक विश्वरूप आचार्य (संवत् 600 के समीप) हुआ है, जिसने बालक्रीड़ा-व्याख्या में याज्ञवल्क्य के श्लोकों की पुष्टि वेदमन्त्रों और ब्राह्मण-पाठों से की है। अन्य टीकाकारों का इधर ध्यान भी नहीं गया।

वेद का यथार्थ विद्वान्—भारतीय संस्कृति में वही पुरुष वेद का पण्डित अथवा वैदिक विद्वान् माना जायेगा, जो वेद की श्रुतियों से सम्पूर्ण

---

1. सर्वो दण्डजितो लोकः। *मनु 7/22*

धर्मशास्त्र का आगम बता सके। दण्ड-विधान की सूक्ष्मताएँ वेद-मन्त्रों से दिखानी आवश्यक होंगी।

समाज-शास्त्र का आधार वेद—मनुष्य समाज में रहता है। समाज का ढाँचा वेद से चला है। तभी समाज-शास्त्र की आवश्यकता पड़ी। उसकी रक्षा दण्ड-विधान से हुई। अतः उस शास्त्र का आधार वेद है।

(ख) वेद और वेद का प्रतिपादक मनु दोनों सर्वज्ञानमय।

मनु कहता है—

यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥ 2॥

अर्थात् जो कुछ किसी का भी धर्म मनु ने कहा, वह सब वेद में कहा गया है। वेद सर्वज्ञानमय है। (अथवा मनु भी सर्वज्ञानमय है।)

मनु-विषयक यह दूसरा अर्थ श्लेष से आकृष्ट होता है। गोविन्दराज ने पहला अर्थ ही ठीक माना है।

सर्वज्ञानमूलक वेद—मनु के श्लोक से पहले कह चुके हैं कि वेद अखिल धर्म का मूल है। अब उससे भी अधिक कथन है—वेद सर्वज्ञानमय है। वेद का अध्यापक, वेदपारग सर्वज्ञानमय होता है।

वर्तमानकाल के भारतीय विश्वविद्यालयों के नाममात्र महोपाध्याय जो वेद पढ़ा रहे हैं, वे इस गुण के समीप फटक भी नहीं रहे हैं। वस्तुतः वे वेद नहीं जानते। उनको वेदाध्यापक बनाना भारतीय संस्कृति के साथ उपहास करना है।

आर्यसमाज का तीसरा नियम—दूरदर्शी, महामुनि पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज का तीसरा नियम बनाया—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इस नियम का मूल मनुस्मृति का यही श्लोक है। इस नियम के शेष भाग का मूल मनु० 4। 147॥ है। स्वामी दयानन्द सरस्वती मनु के अनन्य-भक्त थे। उन्होंने अपने उपदेश का आधार उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र और गीता को नहीं बनाया। शंकर, रामानुज और वल्लभ आदि पुरातन आचार्यों से वे अधिक दीर्घ-दर्शी थे। उनका मार्ग प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय का मार्ग था। वे राजनीति को भी मानव-कल्याण का सोपान मानते थे। अतः वेद से उतर के उन्होंने मनुस्मृति को अपने उपदेश

का अंग बनाया और मनुस्मृति के सतत-अभ्यास से वेद के सर्वज्ञानमय होने का तथ्य उनके हृदय पर अमिट रूप से अंकित हो गया।

वेद में त्रिकाल-ज्ञान—मनु के लिए वेद की महत्ता अन्य कारण से भी है। वेद में त्रिकाल का ज्ञान है। मनु कहता है—

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति। *(12 / 97)*

अर्थात्—भूत = सारी, सृष्टि = उत्पत्ति, वर्तमान और जो कुछ आगे होगा, यथा प्रलय और उसके पश्चात् भी, वह सब वेद में वर्णित है।

यह विज्ञान की चरम सीमा है, बुद्धि के ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है और योगज-प्रत्यक्ष-दर्शन की अपरिमित महिमा है।

वेद-निन्दक नास्तिक—इस महत्व-परिपूर्ण, शुभ्रज्ञान की जो निन्दा करता है, वही नास्तिक है। मनु कहता है—

नास्तिको वेदनिन्दकः। *(2 / 11)*

अतः आगे बतायेंगे कि नास्तिक-आक्रान्त देश किस प्रकार विनाश को प्राप्त होते हैं।

वेद-पुण्य—इसलिए मनु ने—वेदफल 1 / 109 ॥, वेदपुण्य से युक्त होना—2 / 78, वेदाभ्यास परमतप—2 / 166 ॥, वेदचक्षु—12 / 94 ॥ से वेद की महिमा गाई है।

भारतवर्ष के कल्याण के लिए तथा इसकी पूर्व-प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए वेदज्ञान के उपार्जन और प्रसार का अभूतपूर्व आन्दोलन होना चाहिए। अंग, उपांग और ब्राह्मण ग्रन्थों के शतशः जाननेवाले, सदाचार की सुदृढ़ नींव पर खड़े होकर यह कठिन काम कर सकेंगे।

2. वर्णाश्रम की श्रेष्ठ मर्यादाएँ—मनु की दूसरी देन वर्णाश्रम-मर्यादा की स्थापना है। इस मर्यादा से रहित संसार आज दुःख-क्रन्दन कर रहा है। लोभ से अति-पीड़ित हो रहा है।

मनु का ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ—ब्राह्मण धन-बल से ऊँचा नहीं है, ब्राह्मण बाहु-बल से भी ऊँचा नहीं है। वह ऊँचा है अपने अप्रतिम ज्ञान-बल से। उसका विशिष्ट-ज्ञान वेद पर आश्रित है। उसकी बड़ाई ज्ञान से ही है—**विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम्।** *(2 / 155)*

ब्राह्मण आविष्कारक—सृष्टि के सुख के लिए परमोच्च ब्राह्मण

भगवान् ब्रह्मा ने सम्पूर्ण शास्त्रों का शासन किया। उशना=शुक्र और बृहस्पति ने अनेक विद्याएँ रचीं। उशना ही मृतकों को जीवित करने में सशक्त हुआ। ब्राह्मण विश्वकर्मा ने अपूर्व शिल्प आविष्कृत किये। भरद्वाज ने आकाश-गंगा तक उड़ने वाले विमान बनाये। ब्राह्मण-प्रवर व्यास ही दिव्य चक्षु = विद्युत आँखें दे सका।

आर्य जाति में राजा, प्रधानमन्त्री, अथवा गण-नायक इतना पूज्य नहीं, जितना यथार्थ ब्राह्मण पूज्य है। ब्राह्मणों और ऋषियों से अपनी कन्याओं का विवाह करके आर्य राज-गण अपना गौरव मानते थे। वेदज्ञ ब्राह्मण ही यथार्थ नेता होता है।

सर्वतः श्रेष्ठ, ब्राह्मण—भारतीय संस्कृति में सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण वही है, जो केवल अगले दिन की भोजन-सामग्री एकत्र रखता है। उससे न्यून श्रेष्ठ एक से छह मास की सामग्री वाला है। श्रेष्ठता का यही माप उत्तरोत्तर होता है। मनु० 4/2-7॥ ब्राह्मण लोलुप नहीं था। लोभ से धन स्वीकार करनेवाला ब्राह्मण विनाश को प्राप्त होता है, 3/179॥ ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह स्वाध्याय में रत रहे। स्वाध्याय-विरोधी अर्थोपार्जन के सम्पूर्ण व्यवहार उसे त्यागने चाहिए—**सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः।** *(4/17)*

ब्राह्मण पर राष्ट्र का आधार—श्रेष्ठ राष्ट्र का आधार इस अतिमानुष (Superman) पुरुषों पर होता है। जो पुरुष किसी के हाथ बिक नहीं सकता, जो खरीदा नहीं जा सकता, वह विद्वान् ही राष्ट्र का आधार होता है। आज इन पूज्य पुरुषों के अभाव में भारत दुःखी है।

ब्राह्मण से भारत का गौरव—मनु-निर्दिष्ट मार्ग पर चलनेवाले इन्हीं ब्राह्मणों के गीत ह्वेनसांग, अलमासूदी, अलबेरूनी, निकोला, मनूची और कर्नल विल्फर्ड ने गाये हैं।[1] मार्श मैन ने भी लिखा है—

"The Directors of the East India Company opposed their (Christian missionaries) activities on the ground, among others, that these would interfere with the Hindu religion, which produced men of purest mo-

1. देखो, भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग प्रथम, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 63-65

rality and strictest virtue."

निस्सन्देह आर्य धर्म ने पवित्रतम आचार और शुभ्र गुणयुक्त नर उत्पन्न किये थे।

इसका सारा श्रेय मनु और तदनुकूल आर्य राज्य को है। मनु का सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण वही है, जिसकी सांसारिक वासनाएँ लघुतम हों। मनु की संस्कृति के प्रासाद की छत के स्तम्भ राजगण नहीं, ऋषि और श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं।

दोषी ब्राह्मण को चतुर्गुण दण्ड—ज्ञानवान् ब्राह्मण पूज्य है। वह श्रद्धा का स्थान है। पर दोषी होने पर मनु ने उसको छोड़ा नहीं। वह वाक्-पारुष्य आदि अधर्म करे, तो शूद्र की अपेक्षा उस पर दण्ड चतुर्गुण होता है। इसका स्पष्ट उल्लेख मनु 8 / 268 ॥ में है। मनु ने ब्राह्मण की रियायत नहीं की। हाँ, ब्राह्मण के ज्ञान की रक्षा के लिए उसे अवध्य अवश्य कहा है। अन्यत्र स्तेय आदि में ब्राह्मण को शूद्र की अपेक्षा आठ गुणा वा सोलह गुणा दण्ड कहा है। 8 / 337, 338, 8 / 340, 373 भी द्रष्टव्य हैं।

दुष्ट ब्राह्मण की निन्दा—धर्मध्वजी, दुष्ट, वैडाल-व्रतिक, कठोर और छली ब्राह्मण की मनु ने घोर निन्दा की है—4 / 195-197 ॥

निःशुल्क शिक्षा—ब्राह्मण संचय (Hoard) नहीं करता था। उसका निर्वाह दक्षिणा पर था, अथवा उस भूमि पर था, जो राज्य की ओर से उसे मिलती थी। शतशः प्राचीन ताम्र शासन, जो आज भी मिलते हैं, इस बात का प्रमाण हैं। ये ब्राह्मण जाति को शिक्षा देने के काम में लगे रहते थे। अतः मनु ने शिक्षा का निःशुल्क प्रसार बताया है। राज्य की ओर से शिक्षा पर कोई धन विशेष व्यय नहीं किया जाता था। भृतकाध्यापक अर्थात् वेतन लेकर पढ़ानेवाले ब्राह्मण की निन्दा की गयी है—3 / 156 छात्र ऐसे ब्राह्मणों के पास रहकर अनुशासन और विनय सीखते थे।

ब्राह्मण भूमि का कर्षण स्वयं नहीं करते थे। अतः जो शूद्र उनके निमित्त भूमि-कर्षण करते थे, वे उनके सत्संग से श्रेष्ठ गुण सीखते थे। वे पतित होने की ओर नहीं झुकते थे। राष्ट्र में सदाचार का स्तर पर्याप्त ऊँचा रहता था।

मनु की व्यवस्था सर्वतोमुख सुख का प्रसार करती है।

क्षत्रिय प्रभुत्व का अभाव—मनु ने क्षत्रिय का अथवा राजा का प्रभुत्व नहीं रहने दिया। वह दण्ड चलानेवाला था। अपनी मनमानी नहीं कर सकता था। साधारण अथवा प्राकृत जन की अपेक्षा दोषी ठहरने पर राजा को सहस्त्र गुणा दण्ड विहित है—3 / 336 ॥ राजा पर दण्ड का अधिकार श्रेष्ठ ब्राह्मणों को था। मनु-प्रदर्शित शासन अत्यन्त गहरा और कठोर है। इसमें किसी की रियायत नहीं; सिफारिश नहीं।

वेद-विद्या-रहित राज्याधिकारी नहीं—आर्य राज्य में कोई राजा, कोई राष्ट्रकर्णधार वेद-विद्याविहीन नहीं होना चाहिए। वेदाध्ययनशून्य क्षत्रिय भी राज्य का अधिकारी नहीं है। अतएव मनु कहता है—

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥ *(7 / 2)*

अर्थात्—क्षत्रिय को ब्राह्म संस्कार अर्थात् वेद पढ़ने का सारा क्रम पार करना होगा। वही न्यायपूर्वक राष्ट्र का रक्षण कर सकता है।

आज भूमण्डल के वेद-ज्ञान्य शून्य शासक शतशः अन्याय कर रहे हैं। प्रजा पीड़ित हो रही है।

मनु पुनः कहता है—

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥ *(12 / 100)*

अर्थात्—सेना-संचालन, राज्य और दण्ड-विधान के नेतृत्व=दण्ड-प्रणयन, अपि च सम्पूर्ण संसार के आधिपत्य के योग्य वेद-शास्त्र का ज्ञाता ही होता है।

इससे ज्ञात होता है कि धनुर्वेद की सम्पूर्ण शिक्षा वेद से मिल सकती है। निस्सन्देह वेद के इन्द्र और मरुत् देवता-विषयक सूक्तों में सैनिक ज्ञान के रहस्य अथवा सूक्ष्म तत्त्व ओत-प्रोत हैं।

राज्य-दण्ड पर आश्रित—मनु ने दण्ड की महती प्रशंसा की है। वस्तुतः दण्ड पर ही सारा लोक आश्रित है। वर्णाश्रम दण्ड से ठीक चलते हैं—7 / 17-29 ॥

राजा त्रिवर्ग का पण्डित—त्रिवर्ग में धर्म, अर्थ और काम की गणना होती है। शासक को इन तीनों का ज्ञाता होना चाहिए। वह धर्मकामार्थकोविद

होना चाहिए—7 / 26 धर्म का ज्ञाता अर्थात् कानून का ज्ञाता। इसमें वह शाश्वत-धर्म भी सम्मिलित है, जो आदिकाल से चला आ रहा है। काम का ज्ञाता अर्थात् प्रजा-सुख के अखिल साधनों का ज्ञाता। और अर्थ का ज्ञाता अर्थात् सम्पूर्ण अर्थशास्त्र-विद्याओं का पण्डित।

आज इस महान् ज्ञान के बिना ही अगणित लोग लोकसभा और विधान-सभाओं के चुनाव लड़ते हैं। देश का इससे अधिक दुर्भाग्य और क्या हो सकता है!

कठोरता की पराकाष्ठा—राजा का कर्तव्य है कि दोषयुक्त अथवा धर्म-विहीन होने पर अपने पिता, आचार्य, मित्र, माता, भार्या, पुत्र और पुरोहित को भी दण्ड दे। वहाँ दया आदि का कोई अवकाश नहीं।

राष्ट्र में शूद्र-संख्या न्यून रहे—मनु निरन्तर प्रोत्साहन देता है कि देश में शूद्र-संख्या न्यूनतम होनी चाहिए। वह प्रत्येक पुरुष को अवसर देता है कि शूद्र मत रहो। इसीलिए मनु आचारहीन, आलस्ययुक्त और अन्न-दोषवाले ब्राह्मण को गर्हित कहता है।[1] वह पतित ब्राह्मण को भी शूद्र ही बना देता है। उसका ध्येय मनुष्यमात्र को उन्नत करना है। इसलिए उसने स्पष्ट कहा है—

यद् राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तम् अद्विजम्।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम्॥ *(8 / 22)*

अर्थात् जो राष्ट्र शूद्रों की अधिकता से भरा पड़ा है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

जघन्य शूद्र—जिस प्रकार से श्रेष्ठ और साधारण ब्राह्मण का सदा भेद है, उसी प्रकार अति निकृष्ट और उत्कृष्ट शूद्र का भी भेद है। शूद्र जघन्य भी है। वह कौन है? अज्ञानी, स्वार्थी, लोभी, व्यसनी, धर्म-मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला जघन्य शूद्र है। ऐसे लोग राष्ट्र-हनन का कारण बनते हैं। जो शिल्पी लोभ आदि दुर्गुणों से रहित, परन्तु अज्ञानी है, वह शूद्रों में श्रेष्ठ है। मनु उसे ज्ञानमार्ग का अवलम्बी बनाकर उसके लिए ऊँचा मार्ग खोलता है। जिस मनु ने शूद्र के लिए ऊँचा मार्ग खोला है, उसका मानवमात्र

1. मनु० 5 / 4

के लिए महान् प्रेम है।

अमात्य-शुद्धि—मनु ने मन्त्रियों की शुचिता पर बहुत बल दिया है। उसी को ध्यान में रखकर विष्णुगुप्त ने अमात्यों पर भी राजा के अन्तरंग गुप्तचरों की व्यवस्था बताई है। रामायण में वाल्मीकि ने प्रशंसापूर्वक लिखा है कि दशरथ के अमात्य अत्यन्त शुद्ध और अनुकरणीय जन थे।

कूट आयुध और माया-निन्दा—मनु ने 7 /90॥ में कूट-आयुधों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। आज का संसार इस दिशा में तंग हो रहा है। ये कूट-आयुध विनाश का कारण बनेंगे। इनके साथ मनु ने 9 / 104॥ में माया-युद्ध की भी निन्दा की है। श्रीकृष्ण जब शाल्व के साथ युद्ध कर रहे थे, तो शाल्व ने माया-युद्ध आरम्भ कर दिया। इसका प्रतिकार तो कृष्ण ने कर दिया, पर अपनी ओर से इसका प्रयोग नहीं किया।

अस्त्रों के विषय में भी धनुर्वेद आचार्य मनु के आदेश का ध्यान रखते थे। जब सर्वास्त्र सीखकर अर्जुन हिमालय में अपने भाइयों से मिला, तो उन सबने अस्त्रों के चमत्कार देखने की इच्छा प्रकट की। अर्जुन ने अस्त्र चलाये। उस घटना का ज्ञान होते ही इन्द्र आदि आचार्य उस स्थान पर आये। उन्होंने पाण्डवों से कहा—युद्ध के बिना अस्त्र का प्रयोग वर्जित है, इस चमत्कार-दर्शन के विचार को त्याग दो। तब ऐसा ही किया गया। महाभारत के सर्वनाशक युद्ध में भी अर्जुन ने केवल एक दिन पाशुपतास्त्र का प्रयोग किया था।

यह अन्तर्राष्ट्रीय नियम होना चाहिए कि अस्त्रों का प्रयोग युद्ध के सिवा अन्यत्र न हो। कभी संसार मनु की आज्ञा का पालन करता था। तब इतने विनाश का महाभय नहीं था।

आश्रम—आश्रमों की मनु-प्रणीत मर्यादा लोकहित का गुह्यतम निदर्शन है। ब्रह्मचारी सीधा-सादा रहता है। वह बूट और जूता नहीं पहनता। उसके वसन अति थोड़े होते हैं। वह नगरों के विषाक्त स्थानों से परे रहकर एकान्त में विद्याभ्यास करता है। उसका भोजन भी सादा और ब्रह्मचर्यवर्धक होता है। वह विनीत और संयतेन्द्रिय बनता है।

3. मनु धन्यवाद का पात्र—ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तथा च ब्राह्मण और शूद्र को अत्यन्त सादा और न्यूनतम आवश्यकताओं वाला

बनाकर मनु ने समाज की आर्थिक समस्याओं का एक विशिष्ट हल दिया है।

आजकल के स्कूल और कालेजों के छात्र जिस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं, उसके कारण शौकीनी उच्च शिखर पर पहुँच रही है। देश के छात्रों के कोट और जूतों को तैयार करने के लिए ही लाखों लोग शूद्र बन रहे हैं। इस पर इतना भय नहीं था, पर उन लाखों शूद्रों की पर्याप्त संख्या भी जघन्य शूद्र बन रही है।

आदर्श 'Standard' की होड़—आज वानप्रस्थ के लिए कोई स्थान ही नहीं रहा। संन्यासी समाप्त से हो रहे हैं। इस Standard ऊँचा करने की दौड़ में सब पिस रहे हैं। Standard केवल क्षत्रिय और गृहस्थावस्था वाले का अपेक्षाकृत उठना चाहिए। शेष का Standard सादगी रहे तो देश की आर्थिक तुला के पलड़े समावस्था में रहेंगे, अन्यथा आदर्श ऊँचा करते-करते देश ही समाप्त हो जायेंगे। आचार का आदर्श वास्तविक आदर्श है। धन का आदर्श उससे बहुत नीचा स्थान रखता है।

3. आचार—भारतवर्ष के सम्पूर्ण धर्मशास्त्रकारों ने अपने-अपने ग्रन्थों में आचार का अध्याय अत्यन्त आवश्यक समझा है। इसका कारण है, मनु ने आदि में आचार पर अति बल दिया था। उसी का अनुकरण उत्तरवर्ती शास्त्रों में हुआ। आर्य ऋषि-मुनि जानते थे कि मानवजीवन की यात्रा आचार के पाथेय पर आश्रित है। आचार से आयु मिलता है, आचार से प्रजाएँ गुणवती होती हैं, आचार से अक्षय धन—परलोक का सहायक धन मिलता है। आचार मानव-लक्षणों का उल्लंघन करके सुख की वर्षा करा देता है। मानव-लक्षण का अभिप्राय है, सम्पूर्ण शरीर के—माथा, आँख, दाँत, बाहु, अँगुलियों आदि के लक्षण।

आचार क्या है—आचार में सारे संस्कारों की गणना है। आचार में सोना, उठना, खाना, पीना, गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा के व्यवहार के नियम हैं। फिर रात्रि के समय सिर किस ओर करके सोना चाहिए, यह भी आचार का अंग है। आचार परम धर्म है—1 / 108 ॥ इस आचार के अभाव में सारा भारत पीड़ित हो रहा है।

वर्तमान सरकार की आचार-संहिता—सुनते हैं, आजकल आचार-

संहिता, सम्भवतः चुनाव-विषयक आचार-संहिता बनाने पर बड़ा शोर मच रहा है। भला ये लोग, जो शाश्वत-ज्ञान से शून्य हैं, सब त्रुटियों को दूर करनेवाली कैसी आचार-संहिता बनायेंगे?

धनाधिकार—अब एक ऐसी बात की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं कि जिसका संसार में बड़ा कोलाहल है। धन का अधिकारी कौन है? धन किसके पास रहना चाहिए?—यह प्रश्न सदा से आवश्यक रहा है। मनु का उत्तर है—धन पर अधिकार राष्ट्र और व्यक्ति दोनों का है।

राज्याधिकार—राज्य का भूमि, भूमि की उपज, नदियों, जंगलों, पशुओं, खानों को करों (Tax) आदि पर अधिकार है। राज्य के द्वारा ही यह अधिकार व्यक्ति को मिलता है। तदनुसार व्यक्ति भूमि ले सकता है, उस पर अपना घर बना सकता है। उस पर कृषि करके राज्य-कोश में कर दे सकता है, इत्यादि। जहाँ राजा को यह अधिकार प्राप्त है, वहाँ प्रजा का संरक्षण राज्य का सर्व-आवश्यक कर्तव्य है।

कैसे व्यक्ति के पास धन रह सकता है—इस जटिल समस्या का मनु से अधिक अच्छा हल आज तक किसी ने उपस्थित नहीं किया। मनु कहता है—

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः समप्रयच्छति।
स कृत्वा प्लवमात्मानं सन्तारयति तावुभौ॥ *(11।19)*

अर्थात्—जो पुरुष असाधु=कंजूस, दुष्ट, अतिलोलुप आदि से धन को छीनकर साधु=भले पुरुष को धन दे देता है, वह अपने शरीर को नौका बनाकर उन दोनों, साधु तथा असाधु को तार देता है।

निष्कर्ष—सूक्ष्मदर्शी मनु ने संसार को मार्ग दर्शा दिया है। जो पुरुष साधु है, जो दानशील, दयावान्, पर-दुःख-निवारक है, उसके पास धन रह सकता है; पर जो केवल संचयशील, स्वार्थी, व्यवहार में दंभी, कृष्ण-व्यापार[1] करनेवाला, व्यसनी, चोर, डाकू आदि है, वह असाधु है, उससे धन छीन लेना चाहिए। जिस प्रेष्य=नौकर अथवा मजदूर ने सिगरेट, शराब व जुए आदि में धन गँवाना है, उसके पास धन नहीं रहना चाहिए। जिस धनी ने विवाह आदि

1. 'कृष्ण व्यापार' शब्द का प्रयोग नारद आदि स्मृतियों में है।

के समय शराब और वेश्याओं पर, अथवा साधारण समय में जोड़ने के लिए ही धन कमाना है, उसके पास भी धन नहीं रहना चाहिए।

मनु की इस स्पष्टोक्ति की व्याख्या महाभारत, शान्तिपर्व के कई स्थानों में मिलती है।

बृहस्पति की व्याख्या—धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के महान् आचार्य बृहस्पति ने अनुपम शब्दों में इस असाधुपन का व्याख्यान किया है। देखिए—

सभा-प्रपा-देवगृह-तडागाराम-संस्कृतिः।
तथानाथ-दरिद्राणां संस्कारो योजनक्रियाः॥
पालनीयाः समर्थैस्तु यः समर्थौ विसंवदेत्।
सर्वस्वहरणं दण्डः तस्य निर्वासनं पुरात्॥

अर्थात्—सभाएँ, बड़े-बड़े भवन जिनमें अनेक साँझे काम हो सकें, प्याऊ, अग्निहोत्र के स्थान, महान् तालाब तथा उद्यान आदि बनाना अथवा टूटने-फूटने पर उनका संस्कार व मरम्मत कराना तथा च अनाथ और लंगड़े-लूले दरिद्रों को वस्त्रादि देना और उनका जीवन-निर्वाह कराना, ये काम समर्थ धनी लोगों के हैं। जो धनी इन श्रेष्ठ कर्मों को करने में आना-कानी करे, उसका सर्वस्व राजा छीन ले और उसको नगर से बाहर निकाल दे, अथवा राष्ट्र से निकाल दे।

मनु ने धन-विभाजन की तुला के पलड़े ठीक रखने के लिए मानव की उच्च प्रवृत्तियों को जगाया है और मार्क्स ने मानव की नीच-प्रवृत्तियों को उभारा है।

श्रोत्रिय परमसाधु—श्रोत्रिय वह पुरुष है, जो सदा वेदाभ्यास में लगा रहता है। जो उच्च ज्ञान का पुंज है, वह तो अकर (Tax free) है। मनु लिखता है—

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात् करम्॥ *(7 / 133)*

अर्थात्—अत्यन्त कष्ट के समय भी राजा श्रोत्रिय से कर ग्रहण न करे।

आर्य राज्य में यह प्रथा सदा स्थिर रही है। चम्बा आदि राज्यों में ब्राह्मण की भूमि सन् 1947 तक अकरी थी।

वर्तमान में इस प्रथा के नष्ट होने से उच्च आदर्श के लोगों का अभाव-सा हो रहा है।

गो-आदर—महामना मनु परम गो-भक्त हैं। मनु ने यह भाव वेद से सीखा था। गो शब्द का वेद में—वाणी, किरण, भूमि, इन्द्रिय, गो-पशु और गो पशु के विभिन्न दूध आदि विकारों के लिए प्रयोग हुआ है। मनु के 11 / 108-116 ॥ में गो पशु के हनन हो जाने पर उसके प्रायश्चित्त के प्रसंग में गो-महिमा भी वर्णित है।

गो-महिमा क्यों—जब गो एक पशु है, तो आर्यों में उसकी इतनी महिमा क्यों है ? इसका उत्तर महाभारत के एक प्रसंग में है। पाठक, यह सारा जगत् अग्नीषोमीय है। सोम एक अति सूक्ष्म पदार्थ है, जो इस प्राणी-जगत् का एक आधार है। वह सोम पहले देवलोक (द्यु-लोक) में था। उसके नीचे आने का भी एक रहस्य है। सोम के आने और यहाँ भूमि के उदक के साथ मिलने से ही सारे उद्भिज संसार की उत्पत्ति हुई है। अब भी यह सोम सूर्य और चन्द्र के योग से पृथ्वी पर आता है और सारा ओषधि-वनस्पति-संसार हरा-भरा रहता है।

यही सोम गो में सबसे अधिक है। इसीलिए गो-दुग्ध, गो-घृत और गो-मूत्र तक श्रेष्ठ माने गये हैं। इसी गो-गोबर का लेपन रोगनाशक है। फलतः मानव पर महान् कल्याण करनेवाली गो उसकी माता कही गयी है। वर्तमान काल के महामूर्ख, व्यसनी लोग जो वेद में गो-हनन का वर्णन निकालते हैं, वे मानव के शत्रु और दुष्ट-भाव-भावित है।

कल्याण चाहनेवाला, अपने हीन-भाग्य का प्रायश्चित्त करनेवाला—

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्।
आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥ *(11 / 111)*

खड़ी हुई गौओं के साथ खड़ा रहे, चलती हुई के पीछे-पीछे चले, बैठी हुई के पीछे बैठ जाये, वह अभिमान आदि को त्याग देवे।

गौ की महिमा लगभग इन्हीं शब्दों में उत्तरकालिक सब स्मृतिकारों ने की है। अंगिरा, यम आदि ने मनु के ही शब्द दोहराये हैं। शंख-लिखित ने भी कहा है—

गा रक्षेत। तास्वपीतासु न पिबेत्। न तिष्ठन्तीषूपविशेत्। न स्वयमुत्थापयेत्।[1]

हरिषेण (कालिदास) ने रघुवंश 1 / 89 में दिलीप की शिक्षा में लगभग यही शब्द वर्ते हैं।

आर्य संस्कृति—आर्य संस्कृति में गो, ब्राह्मण की महिमा अपार है। ब्राह्मण के ज्ञान पर और गो के सोमांश पर संसार का आधार है।

कर—मनु के अनुसार सुखी राष्ट्र वही है, जहाँ कर साधारण है, जहाँ श्रोत्रिय ब्राह्मण पर तो कर है ही नहीं। 9 / 304, 305 ॥ में मृदु कर-ग्रहण का विधान है। कर क्षत्रिय और वैश्य पर तथा शूद्र-कृषक पर लगता है। व्यापारी वैश्यवर्ग के अन्तर्गत हैं, उन पर भी कर लगता है। यदि कर अत्यधिक हो जायेंगे, तो प्रजा कभी क्रान्ति कर देगी। मनु के अभिप्राय को याज्ञवल्क्य ने अति स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर दिया है—

प्रजापीडनसन्तापात् समुद्भूतो हुताशनः।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणाञ्चादग्ध्वा न निवर्तते॥

अर्थात्—प्रजापीड़न के सन्ताप से पैदा हुआ अग्नि राजा (राष्ट्र) के कुल, श्री और प्राणों को बिना जलाकर राख किये नहीं शान्त होता।

आज भी इस दुःख से भारतीय प्रजा ग्रस्त हो रही है। मजदूर और उच्च वेतनभोगी, तथा च ठेकेदार और कृष्ण व्यापार (कालाबाजारी) करनेवालों के अतिरिक्त सब सामान्य प्रजा अत्यन्त दुःखी हो रही है। इसका परिणाम भयावह होगा।

कर्षण और संग्रह—राजा के लिए कर्षण=शोषण अनिष्ट है। इस शोषण से राष्ट्र नष्ट हो जाता है—7 / 111-112 शोषण व्यक्तियों द्वारा भी बुरा है और राज्यों द्वारा भी बुरा है। कम्युनिस्ट सरकारें भी अपरिमित शोषण कर रही हैं। निस्सन्देह वे नष्ट हो जायेंगी।[2] त्रिकालदर्शी मनु का कथन

---

1. स्मृति-चन्द्रिका, आह्निक काण्ड, पृष्ठ 450 पर उद्धृत।
2. वैदिक वचनों के आधार पर 60 वर्ष पूर्व की गयी लेखक की यह भविष्यवाणी अधिकांश में सत्य हो गयी है। विशाल देश रूस और दर्जनों छोटे देशों से कम्युनिस्ट शासन नष्ट हो चुका है। मुख्य देश चीन अभी शेष है। उसके नष्ट न होने का कारण उसकी व्यवस्था में कुछ परिवर्तन कर लेना है। वहाँ के कम्युनिस्ट शासन में कुछ लचीलापन आ गया है।—सम्पादक

सिद्ध होकर रहेगा। राष्ट्र का संग्रह अथवा सर्वप्रकार से रक्षण ही राजा का कर्तव्य है।

वणिक्कर—सब वणिजों पर कर समान नहीं लगेगा। मनु ने यहाँ भी एक गम्भीर नियम का आदेश किया है। वह कहता है—

क्रय-विक्रयम् अध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमं च संवेक्ष्य वणिजो दापयेत् करान्॥ *(7।127)*

अर्थात्—खरीद का दर, बिक्री अथवा बेचने का भाव, माल पर मार्गव्यय, माल लाने आदि के नौकरों पर खर्च, तथा च अन्य सारे खर्च लगाकर, चोर आदि से रक्षा पर चौकीदार आदि का व्यय देखकर प्रत्येक व्यापारी पर कर लगेगा।

यहाँ पर सब एक रस्से से बाँधे नहीं गये। प्रत्येक की परिस्थिति विचारणीय रहनी चाहिए।

यह सूक्ष्म व्यवस्था मनु ने ही दी थी। आज इसका प्रायः अभाव है।

कर-समाहर्ता—करों के एकत्र करनेवाले आप्त पुरुष हों—7।80॥ आप्त लोग सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य करनेवाले होते हैं। इस कर-शुद्धि पर बड़ा बल दिया गया है। करों के ग्रहण करने में राजा आम्नाय-पर हो। वह स्वयं करमात्रा निर्धारित नहीं कर सकता। कर का अनुपात वेदादि शास्त्रों में निश्चित है।

वेतन-अनुपात—राजा के निरीक्षण में अनेक विभाग रहेंगे। घर के भृत्य से पाचक तक, ड्राफ्ट्स-मैन से सर्वोत्कृष्ट वास्तुविद् (इन्जीनियर) तक, छोटे क्लर्क से अध्यक्ष (सुपरिण्टेण्डेण्ट) अथवा सचिव तक इत्यादि के वेतन-विषय में मनु की सूक्ष्मेक्षिका का निदर्श आगे देखिए—

पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुकृष्टस्य वेतनम्।
षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः॥ *(7।126)*

अर्थात्—यदि छोटे भृत्य को एक पण अथवा एक रुपया दिया जाता है, तो छह रुपया उत्कृष्ट—बड़े का वेतन होगा। साधारण भृत्यों की अवस्था में वरदी अर्थात् वस्त्र प्रति छह मास के पश्चात् देने चाहिए और धान्य का द्रोण प्रतिमास देना चाहिए।

यहाँ एक और छह का अनुपात आश्चर्यजनक है। संसार के थोड़े देशों

में, वर्तमान काल में, परम सभ्यता का यह आदर्श दृष्टिगोचर होता है।[1]

वेतनों का अधिक अन्तर दुःख-कारण—वेतनों का वर्तमान अन्तर महान् दुःखों का कारण है। समाज में अधिक भेद यहीं से उत्पन्न होता है। भारत में आज चपरासी का वेतन लगभग 50 रु. से 75 रु. मासिक है और उच्च मन्त्रियों का वेतन 30000 रु. से 50000 रु. तक पहुँचता है। यह अन्धेर आर्य-राज्य ही दूर कर सकता है।

विद्या वेश्यावत् बिकती है—वेश्या अपनी चमड़ी बेचती है और विद्यावान् अफसर अपनी बुद्धि बेचता है। इन दोनों में अधिक अन्तर नहीं है। जब विद्यावान् को निश्चय हो जायेगा कि उसका ज्ञान रुपया एकत्र करने की लालसा-पूर्ति की दूर सीमा तक नहीं जायेगा, तो वह केवल रुपया कमाने के लिए ही विद्या नहीं पढ़ेगा। वह ज्ञान के लिए भी ज्ञानोपार्जन करेगा। अतः देश में यथार्थ समता उत्पन्न होगी। आज सब लोग नौकरी के लिए पढ़ते हैं। ब्राह्मणत्व का उद्देश्य ही नष्ट कर दिया गया है। अतः इस लालसा के दुःख से निवृत्ति होनी चाहिए।

काम का नियंत्रण—यूरोप की वर्तमान विचारधारा में फ्रायड का स्थान विशेष है। जिस प्रकार मार्क्स ने लोभ की विचारधारा को गुप्त प्रोत्साहन देकर मजूर को उच्छृंखल करके उसकी परम शत्रुता की है, उसी प्रकार फ्रायड ने काम का महासंशुद्ध विश्लेषण करके इसे वृथा प्रधानता दी है। मनु स्पष्ट कहता है—

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥ *(212)*

अर्थात्—काम में लीन हो जाना प्रशस्त नहीं, और न इस मानव-देह में कामरहित होना ही उचित है।

गीता में—मनु के उपदेश की व्याख्या भगवान् कृष्ण ने की है। फ्रायड के कलुषित मार्ग का ज्ञान भगवान् को पहले से था। उसकी निन्दा में गीता का श्लोक है—

---

1. श्री होरीलाल सक्सेनाजी के अनुसार वर्तमान कम्युनिस्ट देशों में इस अनुपात को ध्यान में रखने का यत्न है।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थम् अन्यायेनार्थसञ्चयान्॥ *(16/12)*

अर्थात्—काम-परायण लोग अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए अन्याय से अर्थों का सञ्चय चाहते हैं।

यूरोप में फ्रायड का खण्डन पूरा नहीं हुआ। भारत की पुण्यभूमि भी संस्कृत-विद्या के अभाव में उसी गर्त में गिर रही है।

दुष्प्रकार से अर्थसञ्चय का विरोध वेद से चला था—**मा गृधः कस्यस्विद् धनम्**—मत लालच करो किसी के धन का। सूक्ष्म-दृष्टि से वेद ने यह भी बता दिया है कि धन का स्वामी व्यक्ति भी होता है।

काम पर पूरा नियंत्रण करके मानवयात्रा सफल होती है। काम स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखता। यही स्थान फ्रायड ने नहीं समझा। काम का मूल संकल्प है। इसीलिए शान्तिपर्व में काम जीतने का प्रधान उपाय बताया है—**कामं संकल्प-वर्जनात्।** काम को जीते संकल्प के वर्जन से। फ्रायड ने अधूरा अंश लेकर मिथ्या-विचार प्रचलित किया है। यह अंश मनु को ज्ञात था। मनु कहता है—

यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत् कामस्य चेष्टितम्॥ *(2/4)*

अर्थात्—सम्पूर्ण कर्म काम की चेष्टा द्वारा है।

इस कर्मक्षेत्र को श्रुति नियन्त्रित करती है। मनु ने उसी का संकेत किया है। फ्रायड इस सूक्ष्मता से वञ्चित रहा है। इस काम-नियन्त्रण को धर्मशास्त्रों और अर्थशास्त्रों में इन्द्रिय-जय कहा है। मनु इस दिशा में सबसे महान् पथ-प्रदर्शक है।

पथ-प्रदर्शक और कल्याण के मार्ग का प्रदर्शक ही सबसे बड़ा हितैषी और मित्र होता है। मनु ने यह काम असाधारण सफलता से किया है। वस्तुतः भगवान् मनु मानव का परममित्र है। मनु को त्याग कर पाश्चात्य और उसका अनुकरण करनेवाले दुःख-सागर में डूबे रहे हैं।